THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180770
UNIVERSAL LIBRARY

प्राण-पूजा

[भवानीप्रसाद तिवारी]

उठ गई जिस दिन धरा से प्राण-पूजा,
राम ने उस दिन विवश पाषाण पूजा ।
आज अभिनन्दित कि जो पाषाण हैं,
आज हम निन्दित, हमारे प्राण हैं ॥

प्रकाशक

प्रेमा पुस्तक-माला,

इंडियन प्रेस लि०, जबलपुर-शाखा, जबलपुर

प्रथमावृत्ति }
१९५२ }

मूल्य १।)

Printed by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

माता-पिता

की

पुण्य स्मृति

को

समर्पित

सूची

विषय		पृष्ठ
कवि, अपनी दृष्टि में		(१)
१ सखि, सुनो, यह ज्ञान कैसा	...	१
२ मैं रही; मेरा गया अभिमान री	...	२
३ चल सजनि, ज्वाला जलाएँ		३
४ कल पतझर था	...	४
५ मैंने ही ज्योति जगाई, सखि !	...	५
६ सब किया; कुछ कर न पाई	...	६
७ कुछ न पाया आप खोकर	...	८
८ आज मन रोया सजनि	...	९
९ कुछ हो न सका मन-चीता-सा	...	१०
१० नयन का पानी न रीता	...	११
११ स्वप्न को साकार देखा	...	१२
१२ हार की जय गा रहा हूँ	...	१३
१३ रुक रहा है गीत मेरा	...	१४
१४ आज मुझको मोह प्यारा	...	१५
१५ है यही संसार मेरा	...	१६
१६ प्राण ले लो मोल कोई	...	१७
१७ सजनि, जब डोले मृदुल द्रुमपात री	...	१८
१८ मत गीत गा	...	१९
१९ मंजरित रसालकुंज	...	२०
२० अब कि जब मैं बोलता हूँ	...	२१
२१ यह रात री !	...	२२

विषय		पृष्ठ
२२ कह कौन ये ?	...	२३
२३ कैसे छोड़ूँ यह जीर्ण जगत	...	२४
२४ हृदय को समझा न कोई	...	२५
२५ मेरी भी एक कहानी है	...	२६
२६ हँस रहा है नाश मेरा	...	२७
२७ उठ गई जिस दिन धरा से प्राण-पूजा	...	२८
२८ क्यों कहूँ इसे मैं भूल, सखी !	...	२६
२६ 'तू, तू न रहे, मैं, मैं न रहूँ'	...	३०
३० मौन कहीं यह टूट न जाए	...	३१
३१ उर सूना था, संसार न था	...	३२
३२ निर्माण करो, निर्माण करो	...	३३
३३ मेरी साँसों के चलने का	...	३४
३४ कह नहीं सकता कि मुझमें कौन डोला !	...	३५
३५ जानकर तुम क्या करोगे मर्म मेरा ?	...	३६
३६ खेत खड़े हैं हरे भरे	...	३७
३७ दीप हो तुम	...	३६
३८ उमग सरिता बह चलो	...	४०
३६ जहाँ विद्युत-दीपकों का एक मेला है	...	४१
४० तिमिर में कैसे ज्योति जली	...	४२
४१ प्यार की अटपट बोली में	...	४३
४२ रेशम डोरी टूट गई	...	४४
४३ गूँजे धरती के गीत	...	४५
४४ साथी, प्यार न बाँधा जाए	...	४६
४५ रूप की अलकापुरी में	...	४७
४६ मन के रंग उलीचो	...	४८
४७ एक पहेली बूझो री	...	४६

विषय		पृष्ठ
४८ मीत प्यार कर चलो	...	५०
४६ जाने छू जाता कौन	...	५२
५० घन ने जीवन-रस	...	५३
५१ कि तू तो गीत गाए चल	...	५४
५२ कि स्वर तिलमिला कर	...	५६
५३ मधुर बीन तेरी	...	५८

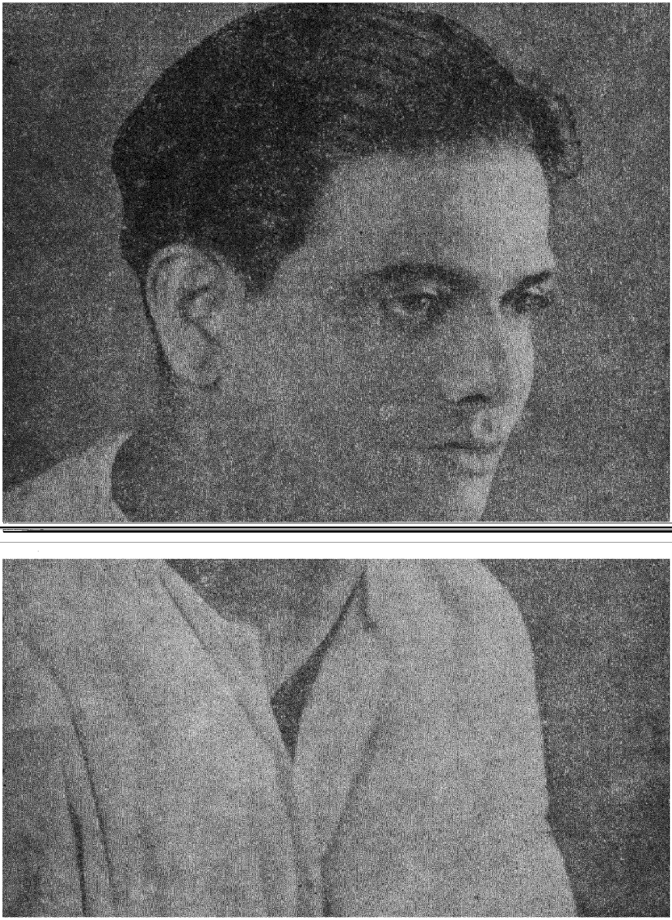

पं० भवानीप्रसाद तिवारी एम० ए०

'कवि, अपनी दृष्टि में'

यह एक एक्सीडेण्ट नहीं है कि मैं कवि हूँ। सच तो यह है कि मेरी माँ कवि थी, जिसके बुन्देलखंडी के विवाह-गीत अब भी हमारे यहाँ की स्त्रियाँ गुनगुनाती हैं। और मेरे पिता सुप्रसिद्ध कवि हुए और "बाप का बेटा, सिपाही का घोड़ा; बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा" के अनुसार मैं भी तुकें मिलाने लगा। मेरी प्रारंभिक कविताएँ जो प्रायः वर्णनात्मक होती थीं वे ऐसी थीं कि,

मुझे क्यों हुआ न इसका भान,
दे रहा दीपक था आह्वान।
और जग उठा अधीर पतंग,
हो उठे चंचल उसके अंग,
हृदय में उठा एक तूफान
किन्तु नीरवता हुई न भंग।
चल पड़ा शलभ मिलन की घड़ी
हो गई आकर सहसा खड़ी,
मिलन है दो हृदयों का प्यार
मिलन ही में निष्ठुर व्यवहार,
अन्त में मिलन, मिलन में अन्त
साथ ही पतझर और वसन्त।
आदि.........

मुझे लगता है कि उस समय विषय पहले मन में आता था, कल्पना दौड़ती थी और तुकें मिलाता जाता था। यह प्रभात है—

मंगल प्रभात, मंजुल प्रभात।
हे उषा सुन्दरी के जीवन,

हे निशानाथ के अन्तिम क्षण,
हे तारावलि के क्षीण गमन
कर किरण-किरण से मधु-वर्षण,
आगत प्रभात, स्वागत प्रभात
मंगल प्रभात, मंजुल प्रभात।
आदि......

यह संध्या—

संध्या ले उतरी चन्द्र-किरण।
हे शुभ्र सोम की पटरानी,
हे विमल व्योम की मनमानी,
स्वागत दिनकर की मलिन विदा
बरसा वसुधा पर सुधा-सुधा
कर जन-मन में जीवन वितरण।
आदि......

अब यह रजनी है—

कौन किये परिधान श्याम पट शून्य गगन में आती,
उर प्रदेश में विषम वेदना क्यों बढ़ती ही जाती?
तारापति के चिर वियोग में क्या तारा रोई है?
किन्हीं अश्रुओं ने काजल की श्यामलता धोई है?
स्मृति है, क्या तू श्यामघटा बन निशि तम में छा जाती
औ' अतीत के करुण कणों को मुझ पर बरसा जाती।

सन् ३० और ३२ में देश के स्वातंत्र्य संग्राम में मुझे सैनिक की भाँति जूझना पड़ा। उस समय छन्दों पर देश काल की परिस्थिति का प्रभाव पड़ा है—टूटे दुर्ग से—

दुर्ग दुर्ग हे रण दुर्गा के चञ्चल लीलाधाम
वीरों की अतीत गाथा के अविचल सुप्त विराम।

× × ×

युवक, आज इस दिव्य दुर्ग का वैभव फेर सकोगे ?
विजय-ध्वजा फहराकर जय जननी की टेर सकोगे ?

रेवा से—

दुर्गम गिरि को चीर सफलता के रण में बढ़ते जाना,
गिरकर किसी गर्त में भी दूनी उमंग से मुस्काना,
देवि नर्मदे, हमें सिखा निश्चित पथ पर बहते जाना,
तेरे कलरव से सीखें अपनी ही भाषा में गाना।

और तो भी कहना यही पड़ता है कि मेरी काव्यधारा राजनीति की कटु यथार्थता से अलग होकर ही बही है। श्री बच्चन के मधुशाला काल में मैं भी उसमें क्षण भर डूबा हूँ। वही दर्शन जिसमें मधुबाला को रहस्यमय और पीनेवाले को रसिक भक्त माना गया है—

निशि बीती, छाया चारों ओर सबेरा।
दिनकर किरणों ने अम्बर को आ घेरा॥
तम का उठ गया अचानक काला डेरा।
जग के आँगन में सबका रैन बसेरा॥
जब ओस कणों ने पंकज से मुँह फेरा।
तब जग-जीवन चिल्लाया मेरा-मेरा॥

× × ×

यह टेर हुई मधु ला, मधु ला, मधुबाले !
हम लेकर आये अपने-अपने प्याले॥
बढ़ती जाती पीने वालों की टोली।
ऊँची होती जाती थी उनकी बोली॥
कोई कहता दीवाना है, दीवाना।
लेकर आया है छोटा-सा पैमाना॥

आदि……

या—

कल पतझर था, कल फिर धधकेगी निदाघ की ज्वाला,
किन्तु आज तो है बसन्त, पी लो यह मादक प्याला।
लाल-लाल टेसू आये हैं, लाल हमारी झोली,
लाल भाल हैं, लाल गाल हैं, लाल हमारी टोली,
आँखें भी कर लाल नशे में ऊँची बोलो बोली।
अपनी और बिरानी भूलो, झूमो खेलो होली।
चलो चलें आबाद करें पीपल वाली मधुशाला॥

ये उस समय के स्वर हैं जब मेरा विवाह हुआ और 'श्रीमान् 'रासभ' ने श्रीमती 'रासभ' की स्तुति गाई थी—

मेरे संगीत-सदन की वह ध्वनि-सी वह गुंजन-सी।
ज्योत्स्ना-सी, रूप राशि-सी, मधुशाला के मधुकण-सी।
दिन कर की एक किरण सी, प्रेमी की परिभाषा-सी।
अपने मिलिन्द की धुन-सी, निर्धन की अभिलाषा-सी।

जब इस आवेश से उबरा और जल्दी ही उबरा तब गीतों में एक अभावजनित वेदना, करुण स्वरों में झंकृत हो उठी।

सब किया कुछ कर न पाई।
चल उठा सहसा प्रभंजन तरु कँपे पत्ते तिरे री,
जल उछल चंचल हुआ सखि घन घिरे मोती गिरे री,
मैं लिये झोली खड़ी थी किन्तु मुक्ता भर न पाई।

जीवन यात्रा में कितने ही साथी आये, प्यारे-प्यारे साथी आये, उन्होंने मोह-ममता तो जगाई पर साथ चलना कहाँ हो पाया ? वे साथ न चल पाये न कहूँगा ! मैं ही साथ न चल सका, यह कहना अधिक ठीक है। कदाचित् यही प्रभाव उस समय के गीतों पर है।

कुछ हो न सका मनचीता-सा—
जब अपनी बाज़ी हार चुका तब फिरता जीता-जीता-सा।

जब मरने को जीवन जाना,
तब अपयश को ही धन माना,
उर का कलंक मैं लिये फिरा अपने प्रिय की गुण-गीता-सा।

जगत व्यवहार पर मेरा कवि खीझ-खीझ उठा है कि—

उठ गई जिस दिन धरा से प्राण-पूजा,
राम ने उस दिन विवश पाषाण पूजा।
आज अभिनन्दित कि जो पाषाण हैं,
आज हम निन्दित, हमारे प्राण हैं।

चरमता यों आई कि—

हृदय को समझा न कोई।
हृदय के क्षण-क्षण उमड़ते प्रलय को समझा न कोई॥
आज जीवन की सफलता का कि छल ही मोल माना,
क्षुद्र जग ने आज मुख के बोल को ही बोल माना,
डोलता जो प्राण में उस सदय को समझा न कोई॥

चरमता के बाद प्रवाह बदल जाना स्वाभाविक ही है—स्वर बदल गया।

अमति को जीता न तो मतिमान कैसा?
अगति से निकला न तो गतिवान कैसा?
ज्योति ही अस्तित्व, भंगुर है अँधेरा,
चल रहा हूँ, क्योंकि चलना धर्म मेरा।

और यह रहस्य समझ में आया कि—

स्नेह तो विस्तार है, बन्धन नहीं है।
अरे जीवन गीत है, क्रंदन नहीं है।
विश्व के समताल पर स्वर कर्म मेरा।
चल रहा हूँ, क्योंकि चलना धर्म मेरा।

या—

मैं पथिक और मेरे पथ की मटमैली लाँबी रेखा है।
पर पथ के दोनों ओर बिछा हरियालापन ही देखा है।
पथ शूलों को तब त्रास कहूँ जब इन फूलों का हास न हो॥

और—

आनन्द जगा जीवन में आज हमारे,
सुख-दुख जिसके दो भंगुर कूल किनारे।

इसी आनन्द की अनुभूति में गीताँजलि का अनुगायन हुआ, मैं इसी में डूब गया—

अब कवि कभी-कभी ही जागता है और तब स्नेह-स्वरूप भाई के मरण में वह उस दिव्यात्मा का प्रकाश ही देख पाता है—अपनी आत्मा को अन्धकार में नहीं डुबोता—

तिमिर में कैसी ज्योति जली ?
कैसे जी की बात बताऊँ किरण-किरण मचली।
वसुधांचल पर चरन-चरन की गति ने स्वर्ण बिखेरा,
बरन-बरन पर आँकी झाँकी बेसुध हुआ चितेरा,
यह कैसा रस-रंग प्राण की धारा फूट चली॥

या—

प्यार की अटपट बोली में,
कह न सकी कुछ चली पिया की झिलमिल डोली में।
इसके बाद एक गीत हुआ है—जीवन-मरण—
रेशम डोरी टूट गई !
लो प्रकाश के संग-संग ही परछाई भी छूट गई।
साथ किरन के आई थी वह प्रात प्रभाती गाते,
अरुण पराग बिखेर गई संध्या-सी जाते-जाते,

जब लौं चरण पखारूँ न तब लौं बन्धन रेखा रूठ गई,
स्नेह कहो मत उसे जगाया जिसने तेरा-मेरा,
मुखर हुआ अधिकार समर्पण तब ले 'कहाँ बसेरा,
गरब गरूरी गागर हलकी तट पर छलकी फूट गई।

एक अधूरी कविता—

हृदयविहीन देवता कि भावशून्य अर्चना,
विवस्त्र आज घूमती जहाँ तहाँ प्रवंचना,
शिला प्रदेश त्याग, प्राणधार तू समेट ले,
मनुष्य उठ मनुष्य को भुजा पसार भेंट ले।

सखि, सुनो, यह ज्ञान कैसा ?

उड़-चला खग, किरन आकर
बीनती थी ओस-कन जब—
दूरवर्ती देश में तब—
उन चमकते नभ-प्रदीपों का
अरे, अवसान कैसा ?
सखि, सुनो, यह ज्ञान कैसा ?

रूप क्षण-भंगुर, कुमुदिनी—
मानिनी ने क्यों न जाना ?
उसे ही सर्वस्व माना !
लाज-भींजी पंखड़ी पर—
अचिर का अभिमान कैसा ?
सखि, सुनो, यह ज्ञान कैसा ?

किरन पीकर ज्योति जागी
और विद्रोही कुसुम-दल
झुका बलि-पथ पर उसी पल ;
प्राण देने का मिला, सुन्दर
उसे वरदान कैसा ?
सखि, सुनो, यह ज्ञान कैसा ?

मैं रही; मेरा गया अभिमान, री !

मिलन की घड़ियाँ कि कब किसने गिनी ?
खोल दे घूँघट, सजनि, सौदामिनी !
मेघ घिर आये; गये मेहमान, री—
मैं रही; मेरा गया अभिमान, री !

रूप-मद विष-सा, कि मदिरा-सा नहीं,
अरी, चढ़ता-सा, उतरता-सा नहीं,
सखी, मधु को फेक, कर विष-पान, री—
मैं रही; मेरा गया अभिमान, री !

पुण्य मेरे बँट गये निश्शंक, री,
मैं लपेटे फिरी क्षुद्र कलंक री,
हृदय में प्रिय का यही प्रतिमान, री—
मैं रही; मेरा गया अभिमान, री !

चढ़े गुन पर छूट निकले तीर से,
लता को झकझोर गये समीर से,
लिये पूजा के सभी सामान, री—
मैं रही; मेरा गया अभिमान, री

३

चल सजनि, ज्वाला जलाएँ।
आज, इस मंगल दिवस में उठ कि सखि, तिनके जुटाएँ ॥

प्यार के पल चार सजनी; फिर तिमिर के द्वार रजनी,
दामिनी की दमक में, री, आ कि सखि दीपक जगाएँ।
चल सजनि, ज्वाला जलाएँ ॥

गगन में घन उमड़ आए; सजल चंचल घुमड़ छाए,
अरी, इस प्रतिकूल को अनुकूल कर अपना बनाएँ।
चल सजनि, ज्वाला जलाएँ ॥

कहाँ मिल पाया ठिकाना! जब कि अपना ही बिराना,
तब कथा किसकी सुनें? सखि किसे हम अपनी सुनाएँ।
चल सजनि, ज्वाला जलाएँ ॥

अचिर सुख का मोह, री, सखि; बन गया विद्रोह री, सखि,
हृदय के उद्‌गार में अंगार उज्ज्वल-तम सजाएँ।
चल सजनि, ज्वाला जलाएँ ॥

झूमता यह शलभ आया; प्राण ने बलिदान गाया,
मरण के सुख वरण पर चुप क्यों रहें? तुक-तान गाएँ।
चल सजनि, ज्वाला जलाएँ ॥

४

कल पतझर था, कल फिर धधकेगी निदाघ की ज्वाला।
किन्तु आज तो है वसन्त पी लो यह मादक प्याला॥

इस प्याले में सभी झोंक दो जग की सजग व्यथाएँ,
आज समा जाने दो इस में उर की सब चिन्ताएँ,
हर्ष-स्वरों से गूँज उठें सहसा ही सभी दिशाएँ,
सुर बालाएं गगनांगन से स्वागत-गान सुनाएँ,
राह देखती बड़ी देर से खड़ी यहाँ मधु-बाला।
अरे, आज तो है वसन्त पी लो यह मादक प्याला॥

बातें करता-सा निर्झर से वन में धूम मचाता,
प्रमुदित मलय पवन आकर कलियों को नाच नचाता,
कल-कोकिल के मधुर स्वरों से निज आलाप मिलाता,
मदमाता मधुकर इठलाता गाता बीन बजाता—
आता, कुसुम कटोरों की पी जाता मीठी हाला।
अरे, आज तो है वसन्त पी लो यह मादक प्याला॥

लाल लाल टेसू आये हैं, लाल हमारी झोली,
लाल भाल हैं, लाल गाल हैं, लाल हमारी टोली,
आँखें भी कर लाल नशे में ऊँची बोलो बोली,
अपनी और बिरानी भूलो, झूमो, खेलो होली,
चलो चलें आबाद करें पीपल वाली मधुशाला!
अरे, आज तो है वसन्त पी लो यह मादक प्याला॥

मैं ने ही ज्योति जगाई, सखि !
छूटी-लट-सी, लहराती-सी, वह धूम्रशिखा मन भाई, सखि !

मेरे जीवन से आलोकित, किरनीला अपना गेह किये,
तम के घेरे में दीप जला मेरे ही उर का स्नेह लिये,
तम-तोम हटा, तब व्योम हँसा, फैला प्रकाश, छवि छाई, सखि,
मैं ने ही ज्योति जगाई, सखि !

अधिकार, अरे, यदि मेरा था, परवाना झूम उठा क्यों कर ?
मेरे जीवन को व्यंग, मरण अपने से बना गया क्यों कर ?
झींगुर ने भीषण स्वर-लहरी में मृत्यु रागिनी गाई, सखि,
मैं ने ही ज्योति जगाई, सखि !

तूफान उठा, लो ज्योति बुझी; काजल के काले दाग, सजनि,
मैं लिये हृदय पर बैठा हूँ, ऐसे हैं मेरे भाग, सजनि,
कब कौन देश को गई, न जाने कौन देश से आई, सखि,
मैं ने ही ज्योति जगाई, सखि !

६

सब किया; कुछ कर न पाई !

चल उठा सहसा प्रभंजन—
तरु कँपे, पत्ते तिरे, री
जल उछल चंचल हुआ सखि,
घन घिरे, मोती गिरे, री—
मैं लिये झोली खड़ी थी—
किन्तु मुक्ता भर न पाई।
सब किया; कुछ कर न पाई ॥

'दूर' और 'समीप' क्या ?—
जाना कि व्यर्थ विवाद है सखि,
पवन कन में छा रहा,—
उस देश का संवाद है सखि,
अरी प्रियतम को—
विरह में भी विलग क्यों कर न पाई ?
सब किया; कुछ कर न पाई ॥

बरसती रसधार थी
मेरा हुआ अंचल न गीला,
सब हरे; बस रह गया
मेरा अकेला गात पीला,
सजनि सुख की लूट में
मैं जोड़कर धन धर न पाई।
सब किया; कुछ कर न पाई ॥

आज जीवन-क्षण, सजनि, सुन
स्नेह से उर के भिंजोए,
और प्रिय की खोज में
मैंने नयन दीपक सँजोए,
गगन-पथ में तड़ित् चमकी
तम मरा; मैं मर न पाई।
सब किया; कुछ कर न पाई॥

७

कुछ न पाया आप खोकर।
तम हटाकर वह प्रभाकर आ गया री ताप होकर।

प्यार दे पूजा, सखी, प्रिय को, कि क्या उपहार दूँ मैं !
झिड़कियाँ बदले मिलीं, री, क्या कहा ? स्वीकार लूँ मैं ?
अरी, वर ले हँस न पाई, ले लिया अभिशाप रोकर—
कुछ न पाया आप खोकर

सखि, नयन तारे हुए, प्रिय नैन से उर में धँसे जब,
प्राण भी प्यारे हुए, प्रिय प्राण में आकर बसे जब,
सुन सजनि प्रतिदिन पिन्हाती हार आँसू के पिरोकर,
कुछ न पाया आप खोकर

तिमिर-गृह का दीप सुन्दर स्नेह से तर्पित किया, सखि,
आरती उसकी सँजो प्रिय चरन में अर्पित किया, सखि,
एक झोंका पवन का,—फिर ज्योति वह जागी न सोकर,
कुछ न पाया आप खोकर

अब समय के सींकचों में बन्द हूँ, प्रहरी प्रहर, सखि,
पुण्य क्षण बीते, कि रीते प्राण दुर्दिन देखकर सखि,
पाप ही साथी बचा तब क्या करूँ, री पाप धोकर,
कुछ न पाया आप खोकर

आज मन रोया सजनि कुछ गा सकूँ।

उर गगन में भावना-घन।
वेदना से उमड प्रतिच्चण,
बिन्दु बरसाते कि मैं कुछ पा सकूँ।

खो चुकी उसको न पा, री
चाँद मेघों में छिपा री,
सिन्धु में तब ज्वार कैसे ला सकूँ।

बोल जय बीते दिवस की,
कामना है व्यर्थ यश की,
अयश ले तेरे किनारे आ सकूँ।

मैं कुरूप गया न बीता,
रूप ने ही रूप जीता,
कौन अपना है जिसे मैं भा सकूँ।

६

कुछ हो न सका मन-चीता-सा ।
जब अपनी बाज़ी हार चुका, तब फिरता जीता-जीता-सा ॥

कटि किंकिणि के स्वर तोल चुका,
नूपुर-ध्वनि की जय बोल चुका,
जब खुले खज़ाने प्राण लुटे, वे क्यों कहते हैं मैं जीता-सा ॥

जब मैंने देखा रूप, सजनि,
तब बिसर गया अपरूप, सजनि,
चढ़ते उस रूप ज्वार में सखि मैं भूला अपना बीता-सा ॥

जब मरने को जीवन जाना,
तब अपयश को ही धन माना,
उरका कलंक मैं लिए फिरा अपने प्रिय की गुन-गीता-सा ॥

जब तलछट भी बाकी न रही,
मधु छलकाती साक़ी न रही,
दीवाने कहते चले यहाँ कुछ लगता रीता-रीता-सा ॥
कुछ हो न सका मन चीता-सा ॥

नयन का पानी न रीता
ज्वाल-सा जलता हुआ, सखि एक आतप और बीता ॥

घन लगे घिरने सखी
पर यक्ष के वे मीत हैं री,
मधुर-स्वर मेरे कहाँ,
वे तो शिखी के गीत हैं री,
विंध्यमाला में प्रतिध्वनि आज तक सखि 'कहाँ सीता ?'

अंधकार अपार है, सखि
और ऐसा भाग मेरा,
रह सका उर में न सीमित,
बह चला अनुराग मेरा,
मैं बना प्रेमापराधी तू रही पावन पुनीता ॥

जो रहा अपना उसे—
सपना न कह, री, ठहर कुछ दिन,
स्वप्न दृग के खो दिए
जलधार में मैंने अभागिन,
सत्य तो धूमिल अभी पर स्वप्न मैंने आज जीता ॥

नयन का पानी न रीता ॥

११

स्वप्न को साकार देखा ।

मधुर प्रिय की याद जैसे हो चली उर में घनी, री,
गगन पट पर सुभग सुन्दर एक प्रतिमा सी बनी, री,
और प्रतिमा में कि चंचल प्राण का अभिसार देखा ।
स्वप्न को साकार देखा ॥

एक लट मुख पर उतर कर झूमती चल-नागिनी-सी,
केशपाशों से विलग हो घूमती हतभागिनी-सी,
और उस लट में कि उलझन का अजब व्यापार देखा ।
स्वप्न को साकार देखा ॥

मूर्त्ति को जब मेटने दल बाँधकर संसार आया,
सामना करने तमक मेरा अकेला प्यार आया,
और मेरे प्यार में जग क्रूर ने संहार देखा ।
स्वप्न को साकार देखा ॥

१२

हार की जय गा रहा हूँ।
आज अपने पर हुआ विश्वास-सा कुछ पा रहा हूँ—

मित्र में सखि तेज कितना !
क्षुद्र हूँ मैं दीप जितना
इसी लघु आलोक पर मैं रात जीते जा रहा हूँ।

सत्य जब भ्रम में समाया
भूल का वरदान पाया
आज जग को भूल, अपने आप को मैं भा रहा हूँ—

स्नेह जब चुक जायगा, सखि !
एक क्षण तब आयगा, सखि !
उसी क्षण के आगमन के गीत अब मैं गा रहा हूँ—
हार की जय गा रहा हूँ

१३

रुक रहा है गीत मेरा।
आज जाने के लिए अनुरोध करता मीत मेरा॥

मीत जिस पर गीत वारे,
मीत, जिसकी जीत पर ये प्राण हारे,
वही अब समझा रहा है, 'कौन मेरा कौन तेरा'।
रुक रहा है गीत मेरा॥

दीप की लौ जल रही है,
उसी गति से चपल दुनिया चल रही है,
कौन मग में गा रहा जग में कि दो दिन का बसेरा,
रुक रहा है गीत मेरा॥

और ध्वनि जब मूक होगी,
हृदय में बस शेष केवल हूक होगी,
इसी धन को जोड़, सखि, मैं कर चलूँगा कूच डेरा।
रुक रहा है गीत मेरा॥

१४

आज मुझको मोह प्यारा।
प्रेमियों को कर सका कब-कब कि सखि जगद्रोह न्यारा॥

सजनि! तिनके का सहारा
याद-सा हमने बिसारा,
डूबना मैं चाहती प्रतिबार जब दिखता किनारा॥

मैं नहीं कुछ रो रही हूँ,
भेद अपना खो रही हूँ,
मैं सजनि! जलधार में हूँ और मुझमें सलिल धारा॥

ज्वार में मिल जाउँगी जब,
पार मैं लग पाउँगी तब,
हार होगी समय की, री, प्यार चमकेगा हमारा॥

आज मुझको मोह प्यारा॥

१५

है यही संसार मेरा ।
भाव की लघु पुंजिका ही बनी प्रत्याधार मेरा !!

एक पावस मेघ आए,
मेघ में जब भार आया,
एक नन्हीं बूँद बन
मेरे हृदय में प्यार आया।
उमड़ता उस बूँद में ही आज पारावार मेरा ॥

मृदु पवन के परस से
विचलित हुई जब लहर चंचल,
हो उठी साकार,—
अन्तर्देश में तब एक हलचल,
सजनि, मेरे उर-बसा 'इस पार' औ 'उस पार' मेरा ॥

१६

प्राण ले लो मोल कोई !
पास आकर बोल दो, ना, प्यार के दो बोल कोई ॥

स्वप्न में तू था; लगा यदि स्वप्न ही यह सत्य होता,
जागकर खोया तुझे यह जागरण कि असत्य होता,
जागरण का, स्वप्न का, यह भेद ही दो खोल कोई ॥

× × ×

विमल सीपी में नयन की स्नेह के जलकण जमाए,
अमित श्रम से तनिक से अनमोल मुक्तागन बनाए,
ले सके जो आँसुओं को, मोतियों के मोल कोई ॥

× × ×

प्यास इतनी है पपीहा तभी पी कह पा रहा है,
प्यास इतनी है तभी जी ज्वाल में रह पा रहा है,
अमर चातक प्राण मेरे प्राण में दो घोल कोई ॥

१७

सजनि, जब डोले मृदुल द्रुम-पात, री !

कुसुम के उस राग-रंजित वेश से,
मंजरी के सुभग सुरभित केश से,
मैं कहाँ जानी कि प्रिय के देश से—
आ रही अनुराग-पूरित बात, री !
सजनि जब डोले मृदुल द्रुम-पात री !

× × ×

सजनि, जब मेघों घिरी बरसात, री !
दलित तृन के हरित जीवित देह से,
और विद्युत् के चमकते गेह से,
मैं कहाँ जानी कि प्रिय के नेह से—
मेह मधुरिम सजल रिमझिम रात, री !
सजनि, जब मेघों घिरी बरसात री !

× × ×

सजनि, जब नभ से हुआ हिम-पात, री !
सुमन वृन्तों में गये री, सिहर झर,
प्राण में सहसा गया, सखि कंप भर,
मैं कहाँ जानी कि प्रिय के शीत कर
छू गये मेरा अपावन गात, री !
सजनि, जब नभ से हुआ हिम-पात, री !

१८

मत गीत गा ।
बैठकर जो पास सुनता हो न कोई मीत-सा—
मत गीत गा ।

शून्य की निस्सीम रेखा शीर्ण कर,
काल का वह वज्र-वक्ष विदीर्ण कर
हृदय में मचले स्वरों में यदि न जग को जीत पा ।
मत गीत गा ।

खो न संचित रख दृगों का अश्रुधन,
गगन में हो चले सावन की भरन,
ठहर घन-वर्षण प्रहर तक, प्रथम ही मत रीत जा ।
मत गीत गा ।

१६

मंजरित रसाल कुंज गुंजित मधु-रागिनी।

वासन्ती वेश किए,
करों हेम-कलश लिए,
पिए अधर ज्योति, सुभग—
अरुणिमा सुहागिनी।
मंजरित रसाल-कुंज गुंजित मधु-रागिनी॥

फूला सखि अमल कमल,
भूला मग विहग विमल,
धवल नवल रूप धरे—
ऊषा अनुरागिनी।
मंजरित रसाल कुंज गुंजित मधु-रागिनी॥

बोल सीख कोकिल से,
गति ले, मलयानिल से,
कलिका से नयन खोल
जागरी, विरागिनी।
मंजरित रसाल कुंज गुंजित मधु-रागिनी॥

२०

अब कि जब मैं बोलता हूँ।
बहुत दिन के लगे उर के घाव ही तो खोलता हूँ॥

सर्जनि उल्का का पतन
देखा कि अपने आप है री!
क्यों कहूँ वरदान इसको
क्यों कहूँ अभिशाप है री!
प्रेम के इस पूर में क्यों पाप-पुण्य टटोलता हूँ!

विरह को उर से लगाया
प्रिय कि मुझको पीर है सखि,
मिलन का मैं क्या करूँ री
मिलन तो बे-पीर है सखि,
तुझे आमंत्रित करूँ क्यों आप ही रस घोलता हूँ॥

रोम-रोम पुकार कर—
स्वीकारता किसकी विजय है,
हृदय के इस निलय में
लय के समय कैसा अभय है,
वात-हत तृन-पात कम्पित, किन्तु मैं कब डोलता हूँ॥

अब कि जब मैं बोलता हूँ॥

२१

यह रात री !
सघन रिमझिम वारि-सेना ले घिरी बरसात री—
यह रात री ॥

दामिनी नभ में समाई
जलद का उर चीर सखि,
उपालंभ बनी उमड़ती
चातकी की पीर सखि,
जल रहे हैं प्राण पामर, भींगते हैं गात री ।
यह रात री ॥

सजनि मेरे प्राण यदि—
होते न मेरे प्राण री,
सजनि मेरे प्राण यदि
होते कहीं पाषाण री,
कुछ न कहती मौन सह रहती सभी आघात री।
यह रात री ॥

२२

कह, कौन थे?
दिग्वधू के सजल अंचल में खड़े जो मौन थे—
कह कौन थे?

धूम से उमड़े कि सजनी नेह से सरसे,
मेघ से छाये कि रिमझिम मेह से बरसे,
बिंध गई मैं इन्द्रधनु के एक ही शर से,
काँपते थे प्राण जिनकी साँस को परसे,
दिग्वधू के सजल अंचल में खड़े जो मौन थे—
कह कौन थे?

२३

कैसे छोड़ूँ यह जीर्ण जगत, रह गए अधूरे गान, सखी।
पग-ध्वनि सुनती हूँ, आएँगे मन के रथ पर मेहमान, सखी ॥

जनस्तुति के स्वर्णिम मन्दिर में
वे प्रतिमा, प्रस्तर, देव बने,
लाचार मनुजता खो न सकी
हैं मुझमें उनमें भेद घने,

वे मनुज बनें तो बनें भले, मैं बन न सकूँ पाषाण, सखी।
पग-ध्वनि सुनती हूँ आएँगे मन के रथ पर मेहमान, सखी ॥

मैंने कब माना, बहुत कहा—
जग ने, प्रिय आते सपने में,
मैं जगती हूँ, मैं तो देखूँगी
जाग्रत को ही अपने में,

आँखें मीचूँ, यदि परस करें मेरे जी को वे प्राण, सखी।
पग-ध्वनि सुनती हूँ आएँगे मन के रथ पर मेहमान, सखी ॥

२४

हृदय को समझा न कोई !
हृदय में क्षण-क्षण उमड़ते प्रलय को समझा न कोई !

निकल कर्दम से, कुचल कृमि को, कि बढ़कर कंटकों में,
प्रबल आतप, वात, हिम, सिर पर सहन कर संकटों में,
सुमन जो विकसित हुआ इस अभय को समझा न कोई !
हृदय को समझा न कोई !

आ रही रजनी कि, सजनी दिवस क्रमशः ढल रहा है,
शलभ का जीवन मिटा, सखि, मधुर दीपक जल रहा है,
दीप पर, लघु शलभ की, इस विजय को समझा न कोई !
हृदय को समझा न कोई !

एक ओर पुकारता जीवन, बुलाता है मरण भी—
बीच में जीवन मरण के प्यार का है एक क्षण भी,
एक क्षण में डूबते चिर-समय को समझा न कोई !
हृदय को समझा न कोई !

और जीवन की सफलता का कि छल ही मोल माना,
क्षुद्र जग ने, आज मुख के बोल को ही बोल माना,
प्राण में जो डोलता उस सदय को समझा न कोई !
हृदय को समझा न कोई !

२५

मेरी भी एक कहानी है!
मेरे अन्तर में ज्वाल-माल, मेरी आँखों में पानी है।

जग मुझे सदा ही छला किया,
जग मुझे सदा ही दला किया,
मैं तो इतना ही कहा किया
रे, भला किया; रे! भला किया
फिर भी सब कहते फिरते हैं यह तेरी ही नादानी है।

मैंने देखा तम औ' प्रकाश,
सुख-दुख देखा रे अश्रु-हास,
रे! घृणा, प्यार रे! जीत हार,
मैंने देखा उद्भव विनाश,
दीवाना कहलो मुझे कि मेरी दुनिया ही दीवानी है।

पहले मैंने चंचल प्रिय को—
स्वर में, गति में, स्वच्छन्द किया,
फिर छन्द-छन्द में घेर-घेर—
उर के बन्धन में बन्द किया,
वे अन्तर चोर चले कहते, यह बस्ती लगे विरानी है।

मेरी भी एक कहानी है।

२६

हँस रहा है नाश मेरा;
आज तो आकाश-सा लगता नहीं आकाश तेरा ॥

हे गगन-वासी निरंकुश
जानता हूँ शक्ति तेरी,
शून्य केवल; हो न यदि
अनुरक्ति मेरी भक्ति मेरी,
हृदय जो मिट जायगा, मिट जायगा आवास तेरा ॥

अरे, मेरा है, कि दुर्बल
ही सही मनुजत्व मेरा,
मनुज की आराधना पर—
है बसा देवत्व तेरा,
और मेरे नाश पर ही जी रहा अविनाश तेरा ॥

ये कि जर्जर तरी
तम की ओर खेता जा रहा हूँ,
मोह, मत्सर, मान
अपने साथ लेता जा रहा हूँ,
और जग को दे रहा हूँ प्रेम और प्रकाश तेरा ॥

२७

उठ गई जिस दिन धरा से प्राण-पूजा,
राम ने उस दिन विवश पाषाण पूजा।
आज अभिनन्दित कि जो पाषाण हैं,
आज हम निन्दित, हमारे प्राण हैं।

२८

क्यों कहूँ इसे मैं भूल, सखी !

जब अपने ही अनुकूल न थे,
यदि पवन बही प्रतिकूल, सखी
क्यों कहूँ इसे मैं भूल, सखी

मैंने वे फूल लुटाए, री
जो-जो प्रिय के मन भाए, री—
अपने पल्ले यदि शेष रहे
कुछ तीखे-तीखे शूल सखी
क्यों कहूँ इसे मैं भूल, सखी

तुम पुण्य और मैं पाप, सखी
अपराधी अपने आप, सखी
यदि पुण्यवन्त जग फेंके—
मुझ पर अंजुलि भर-भर धूल सखी
क्यों कहूँ इसे मैं भूल, सखी

वह मिलन-तीर्थ उस-पार, सखी
यह प्रखर नदी की धार सखी
अथ से इति तक लाचार चले
हम तटिनी के दो कूल सखी
क्यों कहूँ इसे मैं भूल, सखी।

"तू, तू न रहे, मैं, मैं न रहूँ !"

जब स्नेह दिया तब मेरा क्या ?
स्वीकृति तेरी तब तेरा क्या ?
रे हृदय ! हृदय की पीर समझ
मुझ से न कहे, तुझसे न कहूँ
तू, तू न रहे, मैं; मैं न रहूँ

बहती तटिनी की धारा हो
प्रिय तू भी एक किनारा हो
पर लहरों के चंचलपन में
तू भी न बहे मैं भी न बहूँ
तू तू न रहे मै मैं न रहूँ

रसना पर जी की बानी हो
आँखों में करुण कहानी हो
यदि दर्प मचावे उछल-कूद
तू भी न सहे मैं भी न सहूँ ।

३०

मौन कहीं यह टूट न जाए !
वाणी में आमंत्रण स्वर भर कोई यह सुख लूट न जाए ॥

विधु ने समझा कहाँ उदधि के--
उर क्यों आया ज्वार अचानक !
प्रिय क्या जाने मेरे उर सखि
आज समाया प्यार अचानक
डरती हूँ री उतर कि स्वर में मुझ से मेरा छूट न जाए ॥ मौन० ॥

आया मधु, नन्दन कानन में
कोकिल ने मधु-वन्दन गाया,
दूर-दूर री मुक्ति बावली
आज किसी को बन्धन भाया
मैं बोलूँ तो डर है सजनी, मेरा साजन रूठ न जाए । मौन० ॥

३१

उर सूना था, संसार न था

जब कन-कन सूखा-सूखा था,
जब जन-जन भूखा-भूखा था,
तब तूने जाना नहीं—
कि तेरे अन्तर ही में प्यार न था।

जीवन न जगा परछाईं में,
जब बोल न लौटे झाँईं में,
तब तूने जाना नहीं—
कि तेरी वाणी में उद्‌गार न था।

जब तू अपने में खोया था,
जब जग सपने में सोया था,
तब तूने जाना नहीं—
कि तुझमें चेतन का अभिसार न था।

३२

निर्माण करो—निर्माण करो।

मिट्टी में अंकुर जमने दो
वृन्तों पर कलियाँ थमने दो
शूलों में,—फूलों से हँस-हँस—
मरने पर सब अरमान धरो।

निर्माण करो—निर्माण करो।

जो आए हो तो चलना है
जब सुलग उठे तब जलना है
ज्वाला में,—चन्दन प्राण जला
मृत्युञ्जय का आह्वान करो।

निर्माण करो—निर्माण करो।

जीना यदि मानो सजग धर्म
मरना बन जावे महत्कर्म
जीवन को अमर-मृत्यु दे दो
मरने को जीवन-दान करो—
निर्माण करो—निर्माण करो।

३३

मेरी साँसों के चलने का चाहे जग में इतिहास न हो।
साँसों का चलना व्यर्थ नहीं चाहे गति का आभास न हो।

साँसें चलती हैं उनके बल मैं भी तो चलता आया हूँ,
उर में आशा की ज्वाल लिये, युगयुग से जलता आया हूँ,
जिसके सम्मुख पथ ही पथ है उसको प्यारा 'अधिवास न हो।

मैं पथिक और मेरे पथ की मटमैली फैली रेखा है,
पर पथ के दोनों ओर बिछा हरियालापन भी देखा है,
पथ शूलों को तब त्रास कहूँ जब इन फूलों का हास न हो।

यदि इन साँसों के तारों को अपने हाथों सुलझा न सका,
यदि डगमग पैरों जग-मग में मैं तेरे आगे जा न सका,
जय का हो यशोगान कि न हो पर अपजय का उपहास न हो।

मेरी साँसों के चलने का चाहे जग में इतिहास न हो।

३४

कह नहीं सकता कि मुझमें कौन डोला,
अधिक वाणी से मधुर जब मौन बोला !

आज ही झंकार स्वर की जान पाया,
विश्व में अपना कहाँ पहिचान पाया,
आज ही तो बोल ने है भेद खोला ।

छलक आया भाव जो उत्कर्ष है वह,
हृदयतल को छू रहा जो स्पर्श है वह,
आज मेरे बोल में विश्वास बोला ।

जगत में यह प्रश्न है, क्या रूप है रे !
कौन सुन्दर ? रंक है या भूप है रे ?
वही जिसने त्याग पर अनुराग तोला ।

अरे पल भर सही जल मर ज्योति-जीकर,
क्या जिया जीवन जिया जो धूम-पीकर,
शलभ ने उर दे किरन जीवन टटोला ।

धन विजय का गान तो अति क्षुद्र है रे !
अमर करुणा का गँभीर समुद्र है रे !
अरे, जिसने वज्र में रसबिन्दु घोला ।

मृत्तिका मा के हृदय से गन्ध लेकर,
नयन को छवि, अधर को मकरन्द देकर,
सो गया फिर धूल में वह कुसुम भोला ।

३५

जानकर तुम क्या करोगे मर्म मेरा,
चल रहा हूँ क्योंकि चलना धर्म मेरा।

रात बीती, तम हटा, दीपक सिधारा,
चेतना ने आवरण जैसे उतारा,
लोक में आलोक-मय का चिर सबेरा।

अमति को जीता न तो मतिमान कैसा?
अगति से निकला न तो गतिवान कैसा
ज्योति ही अस्तित्व, भंगुर है अँधेरा।

स्नेह तो विस्तार है बंधन नहीं है,
अरे, जीवन-गीत है क्रन्दन नहीं है,
विश्व के समताल पर स्वर-कर्म मेरा।

राह के राही अभी से थक गये तुम?
दूर जाना है कि कैसे रुक गये तुम?
अमर है पर ये पहर भर का बसेरा।

ये न समझो तुम यहीं रह जा रहे हो,
मैं चला आगे कि पीछे आ रहे हो,
भेद की दीवार का निर्जीव घेरा।

चल रहा हूँ क्योंकि चलना धर्म मेरा।

खेत खड़े हैं हरे-भरे !
धरती माता की गोदी में नन्हें पौधे धूल भरे।
किसने जाना, किसने बूझा,
यहाँ उगा, क्यों वहाँ गया ?
किसने बोया ? कहाँ गया ?
इन खेतों में आग लगा दो खेत खड़े जो हरे-भरे।
धरती माता की गोदी में नन्हें पौधे धूल भरे।

× × ×

बालें कैसी पकीं-पकीं !
पवन बहिन का प्यार समेटे अपने भीतर आप छकीं।
किसने जाना, किसने बूझा,
कौन खून से सींच रहा ?
कौन पेट में खींच रहा—
इन खेतों में आग लगा दो जिनमें बालें पकीं-पकीं।
पवन बहिन का प्यार समेटे अपने भीतर आप छकीं।

× × ×

मनुज खड़े हैं मरे-मरे !
वसुधा माता के अंचल पर कृमि कीटों से हैं बिखरे।
किसने देखा, किसने लेखा,
इनके कपड़े कहाँ गये ?
क्यों न गये नंगे भिखमंगे
इनके कपड़े जहाँ गये।
इन मनुजों में आग लगा दो अपनी लाजों आप मरे।
वसुधा माता के अंचल पर कृमि कीटों से हैं बिखरे।

× × ×

खेत हरे हैं, मनुज मरे।
हिन्दू-मुस्लिम, तेरे-मेरे इनमें कितने भेद भरे ?
किसने देखा किसने लेखा ?
इनका प्यार कहाँ बीता ?
इनका क्यों जीवन रीता ?
इन भेदों में आग लगा दो
क्षुद्र लोभ के हैं डबरे।
इन मनुजों में आग लगा दो
इनमें कितने भेद भरे।
इन खेतों में आग लगा दो
खेत हरे हैं, मनुज मरे !

३७

दीप हो तुम, प्रात तक जलते रहो।

छू दिया आलोक ने तुम जल रहे हो,
स्नेह ने पाला तुम्हें तुम पल रहे हो,
नेह-रथ पर किरन-पथ चलते रहो।

प्राण लेने या कि देने ? क्षुद्र भुनगे—
जुट रहे दल बाँध भिखमंगे पतंगे,
तेज हो; कृमि-कीट को दलते रहो।

दीन की कुटिया अँधेरी आइयो हे !
दीप पाहुन, किरन छवि फैलाइयो हे !
तिमिर के उर शूल से खलते रहो।

पवन-वेग-तुरंग-सादी सूर्य आया
दीपकों के अन्त का क्या तूर्य आया ?
चिर-किरन बेला मरण-बेला नहीं है
खेल क्या जो प्राण पर खेला नहीं है !
ज्योति हो तुम, ज्योति से मिलते रहो।

रंग-मय के निशा-दीपित अंग हो तुम,
प्रात-प्रभा-विलीन हुए अनंग हो तुम,
प्राण हो, जल-बुझ सदा छलते रहो।
दीप हो तुम, प्रात तक जलते रहो।

उमग सरिता बह चली।
सुभग कविता कह चली॥

शुभ्र हिम के शैल मन्दिर की कहानी
द्रवित हो जो हो गई है आज पानी—
उमग सरिता बह चली।

झाड़ की, झंखाड़ की वह देविका-सी,
घास की औ' पात की वह सेविका-सी—
उमग सरिता बह चली।

वनों में वन-देवता की आरती-सी,
नगर में वह नागरों की भारती-सी—
उमग सरिता बह चली।

जड़ जगत में जब कि जंगम-ज्वार डोला,
प्राण ने पाषाण में जब प्यार घोला—
उमग सरिता बह चली।

चाँदनी की चूनरी की झिलमिली-सी
कुन्द कलियों-सी लहरियों में खिली-सी
उमग सरिता बह चली।

प्रात किरनों में बनी सत-रंगिनी-सी,
कूल में भी कूल से निस्संगिनी-सी—
उमग सरिता बह चली।

३९

जहाँ विद्युत् दीपकों का एक मेला है,
वहाँ माटी का दिया अपना अकेला है।

ज्योति की धारा जहाँ कि तमिस्र हारा है,
जहाँ प्रभा-प्रपुंज-मर्दित-धूम-धारा है।
जहाँ अनगिन दीप-मणि-युत दीपमाला है,
किरन पर चढ़ती किरन कैसा उजाला है!
जहाँ 'कौन चमक उठे इसका झमेला है,
वहाँ माटी का दिया अपना अकेला है।

चँचला की चमक में जो दीप जलते हैं,
दीप हैं कि दरिद्र के अरमान जलते हैं।
ज्योति एक अखंड, हमने खंड कर डाले।
हाय, धनी-गरीब, ऐसे भेद रच डाले।
जहाँ नेह अभेद ऐसी एक बेला है,
वहाँ माटी का दिया अपना अकेला है।

जानता हूँ रातभर तमभार ढोना है,
यह बड़ी-सी भीड़ अपना एक कोना है।
जानता हूँ रात बीते प्रात होना है,
प्रात होते तेज में अस्तित्व खोना है।
जहाँ जीवन ने मरण का खेल खेला है,
वहाँ माटी का दिया अपना अकेला है।

४०

तिमिर में कैसी ज्योति जली ?
कैसे जी की बात बताऊँ किरन-किरन मचली !

वसुधांचल पर चरण-चरण की गति ने स्वर्ण बिखेरा,
वरण-वरण पर झाँकी-झाँकी बेसुध हुआ चितेरा,
यह कैसा रसरंग प्राण की धारा फूट चली !
तिमिर में कैसी ज्योति जली !

आज प्रेरणा रानी ने विहगी से पंख पसारे,
उड़ी कि बनकर छन्द छा गई नेह नृपति के द्वारे,
यह कैसा आनन्द, जहाँ सुख-दुख की एक गली !
तिमिर में कैसी ज्योति जली !

रोम-रोम झंकार समाई कैसी छेड़ी वीणा,
अन्तरतम की पीर छू रही जैसे परम प्रवीणा,
यह कैसा स्वर भङ्ग, अंक में जिसके राग पली !
तिमिर में कैसी ज्योति जली !

४१

प्यार की अटपट बोली में—
कह न सकी कुछ, चली पिया की झिलमिल डोली में।

एक दिवस मानस-मन्दिर की देहली पर वे आये,
ऐसा लगा कि कह दूँ सजनी, आज बहुत मन भाये,
मन के अपने भाव भिगोए अच्छत-रोली में।
प्यार की अटपट बोली में—

बोली सखी कि पलक पाँवड़े मग में आन बिछा दे,
'कंकन-किंकिनि-नुपुर-धुनि', से पी के प्रान रिझा दे,
लाज निगोड़ी किया न क्यों रस-दान ठिठोली में।
प्यार की अटपट बोली में—

करूँ क्या न मैं करूँ कि मैं तो उलझ रही उलझन में,
प्राणों का आवेग समाये कैसे भंगुर तन में,
रक्तदान अहिवात बन गया जलती होली में।
प्यार की अटपट बोली में—

कह न सकी कुछ, चली पिया की झिलमिल डोली में।

४२

रेशम डोरी टूट गई !
लो, प्रकाश के संग-संग ही परछाई भी छूट गई ।

साथ किरन के आई थी वह प्रात-प्रभाती गाते,
अरुण पराग बिखेर गई संध्या-सी जाते-जाते,
जब लौं चरन पखारूँ तब लौं बन्धन-रेखा रूठ गई ।
रेशम डोरी टूट गई !

स्नेह कहो मत उसे जगाया जिसने तेरा-मेरा,
मुखर हुआ अधिकार, समर्पण तब ले कहाँ बसेरा,
गरब गरूरी गागर हलकी तट पर छलकी फूट गई ।
रेशम डोरी टूट गई ।

४३

गूँजे धरती के गीत आज अम्बर में।

नन्हें पौधों से पुत्रवती है धरणी,
सींचने आ गई शैल-सुता निर्झरिणी,
रसवती दरस दे गई धूलि प्रस्तर में,
गूँजे धरती के गीत आज अम्बर में।

ओ, मनुज, गा उठा जब तू खुले हृदय से,
प्रतिध्वनि में कोई बोला नील-निलय से,
पल रहे किसी के मधुर मर्म अन्तर में,
गूँजे धरती के गीत आज अम्बर में।

कल के उजले पर आज धुँधलका छाया,
कल के धुँधले पर आज उजाला आया,
जीवन ने काटी रात मरण के घर में,
गूँजे धरती के गीत आज अम्बर में।

४४

साथी, प्यार न बाँधा जाए !
शशि को छूने उठे उदधि का ज्वार न बाँधा जाए।
साथी, प्यार न बाँधा जाए !

शैल-शिखर की अँगड़ाई-सी धार उठी अलबेली,
शूल-फूल कंकर-पत्थर में बढ़ती चली अकेली,
वनश्री के शोभा-मन्दिर की भावभरी रँगरेली,
रंजित किरनों के सँग आतुर लहरों की अठखेली,
सिन्धु-मिलन अभिसारवती का पार न बाँधा जाए।

× × ×

बिना साँस के मैंने जीवन कभी न चलते देखा,
बिना स्वाति के मैंने चातक कभी न पलते देखा,
बिना स्नेह के मैंने दीपक कभी न जलते देखा,
ज्योति जली तो शलभों का बलिदान मचलते देखा,
चातक, दीपक, शलभों का उद्‌गार न बाँधा जाए।

× × ×

बचपन में वह भोलाभाला, वय में तनिक रँगीला,
चंचल हुआ दृगंचल में आ, सुधि में सहज लजीला,
यौवन में उद्दाम काम-सा सतरंगी चटकीला,
उमर चढ़े रस बढ़े निरन्तर अन्तर में किरनीला,
जन-जन के मन में फैला विस्तार न बाँधा जाये।
साथी, प्यार न बाँधा जाये !

४५

रूप की अलकापुरी में, प्यार-सा गोया,
चाँद नभ में खेलता था दूध का धोया।

किरन की उन चिलचिलाती बस्तियों में घूम,
तारकों में झिलमिलाती हस्तियों को चूम,
रात थी वह सो गई जो, मैं नहीं सोया!

× × ×

लोचनों के नीर से उजली कहानी झेल,
रक्त से उछली शिराओं की जवानी खेल,
याद थी वह खो गई जो, मैं नहीं खोया।

× × ×

होश इतना है अभी, लो होश जाता है,
कौन जी में झूमता मदहोश गाता है?
साध थी वह रो गई जो, मैं नहीं रोया।

४६

मन के रंग उलीचो—
भरे-भरे मत घन से घहरो
ढरको, रस-कन सींचो।

रस-रीते, रसभरे निरन्तर
भींजै कोना-कोना,
माटी की गागर को छूकर
किया किसी ने टोना,
ऐसे अंक उछालो जी में
झिलमिल रेखा खींचो।

× × ×

हे जन के संकुल अपार
तुम खड़े रहो मत द्वारे,
आओ हे, रसराग परस-से
छू लो प्रान हमारे,
अन्तर के दृग पट खोलो
पर बाहिर के मत मीचो।

४७

एक पहेली बूझो री आए दिन बीत चले,
सलज, स्नेह, सजल दृग भीतर प्यासे कीर पले।

रूप जिसे दिन में दिनकर ने अपने करों उभारा,
निशि में दीपक ने अपने सिर ज्योति-किरीट सँवारा,
तब अरूप अँधियारा बोला, मैं हूँ दीप तले।

मीड़ बीन की सुनूँ कि तब अपने स्वर कैसे गाऊँ?
मेरे स्वर तुम बसो कि मैं तेरी धुन में खो जाऊँ?
इस 'मेरी-तेरी' सुलझा-उलझी ने गीत छले।

अपनी बहिया बही चली अपनी पतवार सँभारे,
डूबन डरी भँवर संकुल में खेवनहार पुकारे,
पीर हँसी आनन्द मगन जब सुख के तीर खले।

एक पहेली बूझो री, आये दिन बीत चले,
सलज, सनेह, सजल दृग भीतर प्यासे कीर पले।

मीत प्यार कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।

मैं भी तो जीवन यात्री हूँ, मेरे साथी,
बहुत दिनों में मिले आज तुम जनम-सँगाती,
अपने मन की सुनो, कहो कुछ मेरे जी की,
दो बातें कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।
मीत प्यार कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।

आतप-दग्धा-धरा पुकारे प्यासी-प्यासी,
अंबर भर में भर आते रसधर-विश्वासी,
यों अभाव के आँगन में हे भाव-देवता!
मंथर पग धर चलो कि ये दिन बीत न जायें।
मीत प्यार कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।

कुछ ऐसी धुन उठे कि बाहर-भीतर बोले,
गूँज-गूँज लहरै, अन्तर के मर्म टटोले,
मेरी वाणी के अक्रम में मृदु गुनगुन के
भर अपने स्वर चलो कि ये दिन बीत न जायें।
मीत प्यार कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।

धुन ही का तो खेल जगत में सुनो रँगीले!
पार करो जो अड़ें राह में बाधक टीले,
गगन बिचुंबी तुंग शृङ्गवाले गिरिवर-सा
ऊँचा सिर कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।
मीत प्यार कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।

खाई-खंदक के संकट सब हट जायेंगे,
झाड़ नुकीले, पाथर टीले कट जायेंगे,
जीवन का आवेग समेटे अनुकूलों से,
निर्झर से झर चलो कि ये दिन बीत न जायें।
मीत प्यार कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।

कहीं सुकृति बो चले सबल हल और कुदाली,
कहीं विकृति को काट चले दो जीभोंवाली,
काँधों, वक्षों, माथों पर जो बहे पसीना,
दामन तर कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।
मीत प्यार कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।

चरण तुम्हारे घेर रहे हैं कंटक काले,
बिलम रहो टुक, मेरे भी तो फूटे छाले,
मैं पग-तल सहलाऊँ, तुम जी से लिपटाकर,
श्रम-थकान हर चलो कि ये दिन बीत न जायें।
मीत प्यार कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।

चलो उठो, खग ने टेरा तज रैन बसेरा,
सूरज ने दिशि-दिशि हेरा लो हुआ सबेरा,
पलकें खोलो और सुनहली उजली किरणें,
अपने दृग भर चलो कि ये दिन बीत न जायें।
मीत प्यार कर चलो कि ये दिन बीत न जायें।

जाने छू जाता कौन साँस चलती है ॥

संदेह-उलूकों ने जब पंख पसारे,
भ्रम से घिर आये घटाटोप अँधियारे,
आवरण हटाता कौन रात ढलती है ॥ जाने छू जाता...

जादूवाले अलबेले नेह-नगर से,
चल चाँद सितारों की झिलमिली डगर से,
दृग द्वारे आता कौन जोत जलती है ॥ जाने छू जाता...

हर पल छिन जब विश्वास-सदन में बीता,
रे मरण आज तुझसे जीवन यों जीता,
रसगागर भरता कौन प्यास पलती है ॥ जाने छू जाता...

५०

घन ने जीवन-रस बरसाया झूमझूम कर;
मधुर समीरण ने दुलराया चूमचूम कर।

माटी-माँ का गन्ध-दान मकरन्द हो गया,
रवि किरनों का खेल रूप का छन्द हो गया।

नभ के स्वर भर गूँज उठे अलि कुञ्जगली के,
रंग भरे मृदु अंग खिल उठे कुसुमकली के।

कि तू तो गीत गाये चल, यही गति है।

प्रगति है, नभ तिमिर में नक्षत्र गढ़ता है,
प्रगति है, चाँदी कि सिर पर चाँद मढ़ता है,
प्रगति है, जो रात बीते अरुण कढ़ता है,
और क्षण पर क्षण निमिष पर निमिष चढ़ता है,
भूमि पर पद-चाप अंकित कर यही कृति है।

× × ×

रक्त से भू सींचता वह कृषक, गाता है,
वह पसीने से नहाता श्रमिक, गाता है,
दौड़ता गाता पवन कैसा सुहाता है
झर कि झरझर मधुर निर्झर जी लुभाता है।
मीत तू सबको निभाये चल यही नति है।
कि तू तो गीत गाये चल यही गति है।

× × ×

हेतु से निरपेक्ष उठता गीत है भाई,
बिना कारण जो वही तो मीत है भाई,
गीत को मत बाँध सीमा बंधनों में रे,
हास में है जो वही तो क्रन्दनों में रे—
जो कि लक्षित भी अलक्षित भी वही स्तृति है
कि तू तो गीत गाये चल, यही गति है।

× × ×

देख मत पीछे कहाँ तक आ गया है तू,
और आगे बढ़ जहाँ तक आ गया है तू,

प्यार के विस्तार में ज्यों-ज्यों तिरेगा रे,
लोभमोह कलुष कगारों-सा गिरेगा रे,
डूब गहरे फिर उभर मेरी यही मति है।
कि तू तो गीत गाये चल, यही गति है।

× × ×

अतल जलनिधि बीच तू तरणी चलाये चल,
इस निबिड़ तम-तोम में दीपक जलाये चल,
रूढ़ काई चीर भाई गति बढ़ाये चल,
मरण पर धर चरण जीवनवरण, यह धृति है।
कि तू तो गीत गाये चल, यही गति है।

कि स्वर तिलमिलाकर बहे छन्द में जब
न जाने कि जैसे तुम्हीं ने पुकारा।

पिये घूँट दो घूँट, लो रात बीती
सुबह मिट चली तारकों की निशानी।
विमल सीप में लोचनों के ढली जो
रही आँसुओं की अधूरी कहानी।
किरन झिलमिलाकर नज़र में समाई
न जाने कि जैसे तुम्हीं ने दुलारा।

कि स्वर तिलमिलाकर बहे छन्द में जब
न जाने कि जैसे तुम्हीं ने पुकारा।

निशा के महल में रही खेलती जो
तरल ओसकन की सरल-सी सजलता।
वही दिन चढ़े धूप में छा गई; आ गई—
भूमि पर फिर सुनहली सफलता।
कली खिलखिलाकर खिली फूल में जब
न जाने कि जैसे तुम्हीं ने सँवारा।

कि स्वर तिलमिलाकर बहे छन्द में जब
न जाने कि जैसे तुम्हीं ने पुकारा।

समय सिन्धु दुस्तर अतल जल निमिष पल
सुबह-साँझ रंगीन छवि का पसारा।
असम्भव जिसे लोग कहते रहे हैं
वहीं है कहीं पर हमारा किनारा।

लहर कसमसा कर उठी ज्वार पर जब
न जाने कि जैसे तुम्हीं ने उभारा।
कि स्वर तिलमिलाकर बहे छन्द में जब
न जाने कि जैसे तुम्हीं ने पुकारा।

मधुर बीन तेरी, स्वरित तार मेरे
बहुत जोड़ता हूँ, नहीं जोड़ पाता।

× × ×

अजब जिन्दगी, लोग आकर कहाँ से
बना बस्तियाँ प्यार की बस गये हैं।
दरस के, परस के, सुरभि, रूप, रस के
मृदुल ताग से प्रान-मन कस गये हैं।
रसा के रसीले लगन बन्धनों को
बहुत छोड़ता हूँ, नहीं छोड़ पाता।

× × ×

बड़ी भीड़ है, देखते-देखते ही
यहाँ जुड़ गया आज रंगीन मेला।
तुम्हें कुछ खबर है ? किसी भाव से बिंध
भटक जो गया एक पंथी अकेला।
उसी भूल-पथ पर चरण-पात अपने
बहुत मोड़ता हूँ नहीं मोड़ पाता।
मधुर बीन तेरी, स्वरित तार मेरे।
बहुत जोड़ता हूँ नहीं जोड़ पाता।